**ओ३म्**

**‘ब्रह्मचर्य विद्या, स्वस्थ जीवन व दीर्घायु का आधार’**

**-मनमोहन कुमार आर्य, देहरादून।**

संसार में धर्म व संस्कृति का आरम्भ वेद एवं वेद की शिक्षाओं से हुआ है। लगभग 2 अरब वर्ष पहले (गणनात्मक अवधि 1,96,08,53,115 वर्ष) सृष्टि की रचना व उत्पत्ति होने के बाद स्रष्टा ईश्वर ने अमैथुनी सृष्टि में चार ऋषियों को वेदों का ज्ञान दिया था। इस वैदिक ज्ञान से ही वैदिक धर्म व संस्कृति का आरम्भ हुआ जो कि आज से 5,000 वर्ष तक उत्कृष्ट रूप में विद्यमान नही। महाभारत का युद्ध वैदिक धर्म व संस्कृति के अस्त होने का कारण बना। वैदिक धर्म व संस्कृति में ही अज्ञानता व स्वार्थों के कारण विकार उत्पन्न होकर पौराणिक मत व हिन्दू धर्म अस्तित्व में आया। वैदिक मान्यताओं के अनुसार मनुष्य जीवन को चार आश्रमों में विभाजित वा वर्गीकृत किया गया था। प्रथम ब्रह्मचर्य, दूसरा गृहस्थ, तीसरा वानप्रस्थ और चौथा संन्यास आश्रम। प्रथम ब्रह्मचर्य आश्रम जन्म से आरम्भ होकर लगभग 25 वर्षों तक का होता है जिसमें 5 वर्ष की आयु व उसके बाद बालक व बालिका को माता-पिता की सहायता से शिक्षा हेतु गुरूकुल, पाठशाला या विद्यालय की शरण लेनी होती है। 25 वर्ष तक इन्द्रियों को पूर्ण संयम में रखकर विद्याग्रहण करने को ही ब्रह्मचर्य आश्रम कहा जाता है। ब्रह्मचर्य का शाब्दिक अर्थ ब्रह्म अर्थात् संसार को बनाने व चलाने वाले ईश्वर को जानकर उसका नित्य प्रति प्रातः सायं न्यूनतम 1 घंटा ध्यान कर अग्निहोत्र आदि कर्मों को करते हुए आरम्भिक अवस्था में माता-पिता के पास रहकर उनसे संस्कार व शिक्षा ग्रहण करने के बाद नियत समय में गुरूकुल आदि विद्यालय में जाकर अध्ययन करना होता है। माता-पिता अपने बच्चों की आयु के अनुसार क्षमता को जानकर उन्हें ईश्वर की सन्ध्या कराते हैं। जब माता-पिता घर में सन्ध्या व हवन करते हैं तो यह बालक व बालिकायें उन्हें देखकर उनके पास बैठकर बिना विशेष प्रयत्न से सिखाये ही स्वयं सन्ध्या व हवन सीख जाते हैं, ऐसा हमारा व्यक्तिगत अनुभव है। जो मातायें व पिता विद्वान होते हैं वह अपनी सन्तानों का निर्माण सावधानी पूर्वक करते हैं जिनसे उनकी सन्तान की शारीरिक, बौद्धिक व आत्मिक उन्नति भली प्रकार हो सके तथा वह जीवन में प्रशंसनीय व्यवसाय करने के साथ यथासमय धार्मिक कृत्यों सन्ध्योपासना, अग्निहोत्र, माता-पिता की सेवा, परोपकार, समाज सेवा के कार्यों को करते हुए सफल जीवन व्यतीत करने में सक्षम व समर्थ हो सके।

 जैसा कि हमने पूर्व वर्णन किया है कि ब्रह्मचर्य काल में बालक व युवकों को संयमपूर्वक जीवन व्यतीत करते हुए इन्द्रियों को पूर्ण नियन्त्रण में रखकर अपने लक्ष्य स्वस्थ जीवन व विद्या प्राप्ति के साधनों पर मुख्यतः ध्यान केन्द्रित रखना होता है। कुचेष्टाओं से बचना होता है तथा ऐसे लोगों की संगति या तो करनी ही नहीं होती ओर यदि हो जाये तो तत्काल उसका त्याग करना होता है जो कुचेष्टायें आदि करते हैं। मित्र मण्डली ऐसी होनी चाहिये जहां ब्रह्मचर्य की प्रतिष्ठा हो। बालक व युवाओं को परस्पर ईश्वर, अग्निहोत्र की विधि, इन कार्यों में स्वस्थिति का आंकलन, इसमें सुधार व उन्नति तथा अपने अघ्ययन की ही बातें अपने मित्रों से करनी चाहिये। इसके साथ ही शुद्ध, शाकाहारी, पवित्र, निरामिष, तामसिक गुणों से रहित, सुपाच्य, बलवर्धक, आयुवर्धक गोदुग्ध, गोघृत, सभी प्रकार के फल, तरकारी व शुद्ध अन्न का सेवन ही करना चाहिये। प्रातः 4 बजे शय्या का त्याग कर शौच से निवृत होकर यथा समय व्यायाम, योगाभ्यास व सन्ध्योपासना आदि कर्तव्यों का पालन करना चाहिये। ऐसा करने से निश्चित रूप से मनुष्य स्वस्थ व बलवान बनता है और उसकी बुद्धि सूक्ष्म से सूक्ष्म विषय को ग्रहण करने में समर्थ होती है। यहां यह बात भी ध्यान में रखनी होती है कि विद्या पढ़ाने वाले अध्यापक-अध्यापिकायें पूर्ण ज्ञानी, विद्वान-विदुषी, अपने कार्य व वेतन आदि से सन्तुष्ट, पुरूषार्थी व धार्मिक हों। जो लोगों वैदिक शिक्षाओं के अनुसार धार्मिक न होकर आधुनिक जीवन जीने वाले होते हैं उनसे शिक्षा ग्रहण करने पर अनेक अनुचित कुसंस्कारों के ब्रह्मचारियों व विद्यार्थियों में प्रवेश करने की सम्भावना रहती है। इसका भी समयानुसार माता-पिता व विद्यालयों के संचालकों सहित स्वयं शिक्षकों को भी विशेष ध्यान रखना चाहिये।

 महर्षि दयानन्द जी ने विद्यार्थियों के लिए व्यवहारभानु नाम की एक लघु पुस्तिका लिखी है। इस पुस्तक में उन्होंने एक प्रश्न प्रस्तुत किया है कि कैसे मनुष्य विद्या की प्राप्ति कर सकते हैं (विद्यार्थी) और करा (आचार्य व शिक्षक आदि) सकते हैं? इसका उत्तर देते हुए वह महाभारत के निम्न श्लोकों को प्रस्तुत करते हैं।

**ब्रह्मचर्य च गुणं श्रृणु त्वं वसुधाधिप।**

**आजन्ममरणाद्यस्तु ब्रह्मचारी भवेदिह।।1।।**

**न तस्य कित्र्चिदप्राप्यमिति विद्धि नरारधिप।**

**वहव्यः कोट्यस्त्वृधीणां च ब्रह्मलोके वसन्त्युत।।2।।**

**सत्ये रतानां सततं दान्तानामूध्र्वरेतसाम्।**

**ब्रह्मचर्यं दहेद्राजन् सर्वपापान्युपासितम्।। 3।।**

**इन श्लोकों में बालब्रह्मचारी व लगभग 200 वर्ष से अधिक आयु के श्री भीष्म जी राजा युधिष्ठिर से कहते हैं कि --‘हे राजन्! तू ब्रह्मचर्य के गुण सुन। जो मनुष्य इस संसार में जन्म से लेकर मरणपर्यन्त ब्रह्मचारी होता है उसको कोई शुभगुण अप्राप्य नहीं रहता। ऐसा तू जान कि जिसके प्रताप से अनेक करोड़ों ऋषि ब्रह्मलोक, अर्थात् सर्वानन्दस्वरूप परमात्मा में वास करते और इस लोक में भी अनेक सुखों को प्राप्त होते हैं।1व2। जो निरन्तर सत्य में रमण करते (अर्थात् विचार व चिन्तन करते रहते हैं), जितेन्द्रिय, शान्त-आत्मा, उत्कृष्ट शुभ-गुण-स्वभावयुक्त और रोगरहित पराक्रमयुक्त शरीर, ब्रह्मचर्य, अर्थात् वेदादि सत्य-शास्त्र और परमात्मा की उपासना का अभ्यासादि कर्म करते हैं, वे सब बुरे काम और दुःखों को नष्ट कर सर्वोत्तम धर्मयुक्त कर्म और सब सुखों की प्राप्ति करानेहारे होते और इन्हीं के सेवन से मनुष्य उत्तम अध्यापक और उत्तम विद्यार्थी हो सकते हैं।।3।।**

**इससे यह ज्ञात होता है कि ब्रह्मचर्य के सेवन से सभी शुभगुणों की प्राप्ति, ब्रह्मलोक अर्थात् मोक्ष की प्राप्ति, सर्वानन्दस्वरूप ईश्वर के सान्निध्य की प्राप्ति, अनेक सुखों की प्राप्ति होने सहित मनुष्य इन्द्रियजयी, शान्त आत्मा वाले, रोगों से रहित पराक्रमी तथा दुःखों से मुक्त होते हैं।** महर्षि दयानन्द, उनके गुरू विरजानन्द सरस्वती, दयानन्दजी के शिष्य स्वामी श्रद्धानन्द, पं. गुरूदत्त विद्यार्थी, पं. लेखराम, स्वामी वेदानन्द सरस्वती, पं. विश्वनाथ विद्यामार्तण्ड, डा. रामनाथ वेदालंकार जी आदि का उदाहरण ले सकते हैं जिन्होंने यशस्वी जीवन व्यतीत किया और अमरत्व की प्राप्ति के कार्य किए।

ब्रह्मचर्य आश्रम अन्य तीन आश्रमों का आधार व नींव है। यह जितना मजबूत व सुदृण होगा गृहस्थ व अन्य आश्रम रूपी भवन भी उनते ही दृण होंगे। वेदानुसार ब्रह्मचर्य से मृत्यु का उल्लंघन किया जा सकता है। राज राष्ट्र की रक्षा कर सकता है। गणित के आधार पर हम यह कह सकते हैं कि जीवन में जितना ब्रह्मचर्य व संयम होगा आयु उतनी ही अधिक, स्वास्थ्यन उत्ना ही उत्तम होगा और न रहने पर स्वास्थ्य व आयु में कमी होना तर्कसंगत है। इतिहास में वीर हनुमान, भीष्म पितामह और महर्षि दयानन्द जी ऐसे ब्रह्मचारी हुए हैं जिनके नामों से सारा संसार परिचित है। हनुमान जी न केवल समुद्र पार कर माता सीता की खोज में लंका पंहुंचे थे अपितु लंका में अपने ब्रह्मचर्य के करिश्में रावण आदि राजाओं को दिखाये थे। लक्ष्मण जी के मूर्छित होने पर वह हिमालय जा पहुंचे और अल्प समय में संजीवनी बूटी लेकर वापिस लंका लौट आये जिससे लक्ष्मण जी के प्राणों की रक्षा हो सकी। भीष्म पितामह भी लगभग 250 वर्ष की आयु में युवकों की तरह युद्ध में लड़े और अर्जुन के तीरों से सर्वत्र बींध जाने पर भी महीनों शरशय्या पर लेटे रहे और उत्तरायण में अपनी इच्छा से प्राण त्यागे। महर्षि दयानन्द ने भी ब्रह्मचर्य के बल पर अपनी मृत्यु को वश में किया हुआ था और इच्छा से प्राण त्यागे। **“ब्रह्मचर्य गौरव”** एवं **“ब्रह्मचर्य का सन्देश”** क्रमशः स्वामी जगदीश्वरानन्द सरस्वती एवं डा. सत्यव्रत सिद्धन्तालंकार जी द्वारा लिखित पुस्तकें हैं जिनका अध्ययन न केवल विद्यार्थियों व युवाओं अपितु सभी आयुवर्ग के लोगों के लिए लाभदायक है। ब्रह्मचर्य को हम स्वयं में एक चिकित्सक या डाक्टर भी कह सकते हैं जो हमें जीवन में अनेक साध्य व असाध्य रोगों से बचाता है। यम व नियम अष्टांग योग के प्रथम व द्वितीय अग हैं जिनमें ब्रह्मचर्य व स्वाध्याय को सम्मिलित किया गया है। इन दोनों के सेवन से जीवन में अनेकानेक लाभ होते हैं। **स्वाध्याय का फल बताते हुए शास्त्र कहते हैं कि यदि कोई व्यक्ति पृथिवी को स्वर्णादि रत्नों से ढक कर दान करे तो उससे होने वाले फल से भी अधिक फल जीवन में नित्य वेदादि धर्म ग्रन्थों के स्वाध्याय करने वाले को होता है।**

**-मनमोहन कुमार आर्य**

**पताः 196 चुक्खूवाला-2**

**देहरादून-248001**

**फोनः09412985121**